

बच्चों के लिए मौखिक कहानियों की परम्परा

प्रभात

मार्च की तपिश भरा दिन। गेहूं के सुनहरे खेतों पर सूर्य चमक रहा था। मैं गेहूं की कटाई कर रहा था। बगल में खेत मजदूर मंगल भगत की पांत चल रही थी। खनखनाते गेहूंओं को हंसिए में लेते हुए मंगल भगत ने कहा- 'कहो तो एक बात तुमसे पूछूं उत्तर देना।'

'पूछो भगत।' मैंने कहा।

मंगल भगत बोले-

'सारद उठी सुरत गुण गावै, नहीं ब्रह्म का चाळा
ब्रह्मा, विष्णु, महेश नहीं थे, करज्यौ संत बिचारा
नाद, न बंद, बदल नहीं अंध, सूरज नहीं चंद
और म्हां नहीं खो ज भैमाता।'

एक ध्वनि हुई, स्मृति जिसके गुण गाती है कि जब ब्रह्माण्ड की कोई आहट भी नहीं थी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवताओं की कहानियों की परिकल्पना भी नहीं थी। कोई नाद, कोई संगीत भी नहीं था। बादल और आंधियां नहीं थे। सूर्य और चन्द्रमा नहीं थे। और जन्म देने वाली किसी माता का अस्तित्व भी नहीं था। उस वक्त क्या था?

मौखिक परंपरा में यह प्रश्न किया जाता रहा है।

पृथ्वी पर जहां-जहां भी मानव जाति अस्तित्व में आई, वहां-वहां अपने अस्तित्व के बोध के साथ ही इंसान के सामने यह प्रश्न पैदा हुआ कि हम कौन हैं? हमारी कहानी क्या है?

यह प्रश्न आज तक किया जाता है। गालिब पूछते हैं-

'सब्जा औ गुल कहां से आए हैं,
अब्र क्या चीज है, हवा क्या है।'

गालिब ने गहरे विस्मय से प्रकृति की रचना को देखते हुए सवाल किया कि ये तमाम हरी वनस्पतियां, ये चटख खिले फूल कहां से आए हैं? ये बादल, ये हवाएं, आखिर ये मामला क्या है?

अलग-अलग जातियों, कबीलों, समुदायों के पास सृष्टि की उत्पत्ति की अपनी-अपनी कहानियां हैं। ऋग्वेद में लिखा है- "इन्द्र ने सूर्य, उषा और आकाश को अनावृत किया।" संस्कृत के विद्वान प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने लेख 'भारतीय कथा परंपरा' में यह बात कही है। इसी लेख में उन्होंने में मैत्रायणी संहिता के हवाले से रात के अस्तित्व में आने की सुंदर कहानी को लिखा है-

“यम की मृत्यु हो गई थी। देवता प्रयास कर रहे थे कि यमी उसे भूल जाए। जब कभी यमी से पूछा जाता वह यही बताती कि यम आज ही मरा है। देवताओं ने कहा कि इस तरह तो वह कभी भी यम को भूल न पाएगी। तो हम लोग रात्रि की सृष्टि करें। तब देवताओं ने रात्रि बनाई। रात्रि के बाद जो दिन आया वह अगला दिन कहलाया। और यमी यम को भूल गई। इसीलिए लोग कहते हैं कि रात और दिन के क्रम में मनुष्य अपना दुख भूल जाता है।”²

मुझे हमेशा से ही न जाने क्यों ऐसा लगता है कि रात कहानी का घर है। कहानी को हम उसके रात-घर में अपना काम-काज करते देख सकते हैं। युगों से देखते आ रहे हैं, आज भी देखते हैं। कहानी से उसके रात-घर में हुई मुलाकात की याद, हमारे मानस पटल पर तारा-जड़ी अंधेरी रात की तरह चिर अनुपम, अद्भुत और अनोखी बनी रहती है। रात के साथ-साथ ही संसार में ‘बात’ आई होगी। राजस्थान में कहानी को बात कहते हैं। मारवाड़ में बात कहने वालों को बातपोश कहते हैं। बातपोश अपनी बात की शुरुआत अनेक तरह से करते हैं। विजयदान देथा द्वारा पुनर्लिखित लोककथा ‘हाथीकाण्ड’ बातपोशों की शैली में इस तरह से शुरू होती है, “यह बात रात जिनती पुरानी, सितारों जितनी नई है, भूख जितनी पुरानी रोटी जितनी नई है, पानी जितनी पुरानी प्यास जितनी नई है, यह बात, बात जितनी पुरानी, हुंकारे जितनी नई है।”³ मौखिक परंपरा में हुंकारे बिना कोई बात बनती नहीं है। हुंकारा भरते हुए सुनने वालों के बिना कहने वालों का क्या मोल। बात सुनना-सुनाना एक सामूहिक कर्म है।

प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी बताते हैं कि “ऋग्वेद विश्व साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसकी रचना ईसा से कुछ हजार वर्ष पहले हो चुकी थी। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर तत्कालीन समाज में कहानी या किस्सागोई की लोकप्रियता और एक प्रचलित विधा होने के प्रमाण मिलते हैं।”⁴

इसी तरह पंचतंत्र में संकलित कथाएं भी मौखिक परम्परा में चली आ रही थीं। उन्होंने लिखा है कि “कहानी के क्षेत्र में पंचतंत्र भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी देन कही जा सकती है। पांचवीं सदी से दुनिया की कई भाषाओं में इसके अनुवाद किए जाने की परम्परा अकारण नहीं चल पड़ी थी। ...अधिकांशतः पंचतंत्र का कलेवर पशुकथाओं के तानेबाने में बुना हुआ है, यद्यपि उसमें अनेक कहानियां ऐसी भी हैं, जो सीधे मनुष्य जगत से सम्बद्ध हैं। पशु कथाओं की परम्परा वैदिक आख्यानों से प्रारम्भ होकर महाभारत, पुराणों और जातक कथाओं में चली आ रही थी। और पंचतंत्र में संकलित कथाओं में से भी बहुत सी उसके पहले से प्रचलित रही हैं।”⁵ वे बताते हैं कि “सिन्दबाद और ईसप की कथाओं का मूल भारतवर्ष माना जाता है। और पंचतंत्र की विश्व यात्रा तो विदित ही है।”⁶ उन्होंने दूसरे देशों के शोधकर्ताओं जैसे कि विण्टनिस के हवाले से भी इस बात को कहा, “दुनिया की किसी भी जाति के पास इतना सम्पन्न कथा साहित्य नहीं है जितना भारतीयों के पास और अन्य देशों में भी जितना पुराना कहानी साहित्य है, वह भारतीय कहानी की देन कहा जा सकता है।”⁷

लोक संगीत और लोक कथाओं के अध्येता कोमल कोठारी एक और अच्छी बात कहते हैं। वे कहते हैं कि- “फोकलोर या लोक आख्यान के अंदर कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसका स्वरूप अखिल भारतीय न हो या अखिल विश्व का न हो। चाहे वह संगीत हो, चाहे वह कथा हो, चाहे महाकाव्य (एपिक) हो या और कुछ हो।”⁷ यही वजह है कि मौखिक साहित्य अनेक देशों का एक जैसा ही है। हमारे यहां लोककथाएं हैं, योरोप के देशों में परीकथाएं हैं। लेकिन अपने संरचनात्मक ढांचे में, अपने अभिप्रायों में, साधारण जन के द्वारा सत्य और मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए अनवरत संघर्षों के संदर्भ में उनमें विश्वजनीन समानताएं हैं।

“बातां री फुलवाड़ी”⁸ की भूमिका के अध्ययन से पता चलता है कि जर्मनी की एक परीकथा थोड़े बहुत फेरबदलों के साथ रूस में ‘मारिया मोरवेना’ और भारत में ‘यामिनी भानु एवं मृगावती’ की कहानी के रूप में मिलती है। ए. के. रामानुजन द्वारा मराठी लोककथा के नाम से संकलित जिस कहानी में भाग्य बताने वाली “सतवई”¹⁰ की बेटी की शादी किन्हीं त्रासद संयोगों के चलते उसके खुद अपने बेटे से हो जाती है। इस कहानी को मैंने पूर्वी राजस्थान

के माड़ अंचल में सुना है। यही कथानक विश्वविख्यात नाटक 'ईडिपस' का है। इसी तरह तूलिका प्रकाशन से प्रकाशित लोककथा 'स्वीट एण्ड सॉल्टी' जो हिन्दी अनुवाद में 'मीठी और खारी' नाम से छपी है। इस लोककथा को राजस्थान के ही जगरोटी अंचल के लोकगायक धवले से पद दंगलों में 'पद' (लोक गायकी और कहानी कहने की गद्य और पद्य मिश्रित शैली) के रूप में सुना है। जो कहानियां बिहार के मिथिलांचल में सुनीं, मध्यप्रदेश में बैगाओं से सुनीं, छत्तीसगढ़ में गोंड आदिवासियों से सुनीं, वे ही लोक कहानियां 'उक्राइनी लोककथाओं के संकलन में भी दिख जाती हैं। अवध में सुनी एक कहानी जिसमें एक किसान औरत शेरों के झुण्ड से उपले बिनवाती है और खाने के लिए घर बुलाकर उनकी पिटाई करती है क्योंकि एक शेर बदले की भावना के चलते उसके पीछे पड़ा हुआ है, इसी कहानी को एक और कहानी की घटना के रूप में मैने राजस्थान के बारां जिले के बिलौदा गांव में एक आदिवासी जुगनू सहरिया से सुना जिसमें किसान औरत ठीक इसी घटनाक्रम में सियारों की पिटाई करती है। लोककथाओं के अध्ययनकर्ता जिसे अभिप्राय कहते हैं, वह यही है। एक साक्षात्कार में विजयदान देथा ने अभिप्राय (मोटिफ) के संदर्भ में चर्चा करते हुए बताया कि "मोटिफ दुनिया भर की कहानियों में जो कॉमन चीज होती है उसे कहते हैं। जैसे सारी कारगुजारी छोटा भाई ही करेगा। बड़े चार या पांच भाई हैं, लेकिन छोटा भाई ही हमेशा जीतेगा। दुनियाभर के लोक-साहित्य के अन्दर ऐसा है"¹¹ एक ही लोककथा में एकाधिक अभिप्राय भी मिल जाते हैं। लोककथाओं की संरचना के संदर्भ में अगर हम इन अभिप्रायों के बारे में नहीं जानते तो चकरा जाते हैं और कहते हैं कि अरे यही तो उस कहानी में भी होता है।

तब फिर दुनिया के अलग-अलग देशों में रहते हुए इन लोक कथाओं में जो कुछ बदलता है, वह क्या है? वह कुछ इस तरह से है कि लोमड़ी की किसी लोक कथा में राजस्थान में जहां रात भर रेतभरी आंधियां चलती हैं, उसी कहानी में रूस में रात भर बर्फ गिरती है। हमारे यहां के चरागाह वहां स्तेपी हो जाते हैं। गंगा के किनारे वहां दूनेपर नदी के किनारे हो जाते हैं। झरनों, वन-प्रातरों के नाम बदल जाते हैं। लोगों के नाम बदल जाते हैं। हमारे यहां की राई, वहां मारिया हो जाती है, बैरू, वान्या हो जाता है और अली, द्मित्री पेत्रोविच हो जाता है। पात्रों में सांस वही रहती है, काया श्वेत-श्याम, गेहूंआ, गहरी सांवली हो जाती है। अलग-अलग देशों की लोककथाओं में संरचनागत समानताओं के बावजूद स्थानीय प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक संदर्भ अलग-अलग देशों की तरह बिल्कुल अलग होते हैं। लेकिन इंसान तो सब जगह एक ही है। दुनिया में कहीं भी चले जाओ इंसान के सुख-दुख सब जगह एक से हैं। तभी तो कहानी अफ्रीकी मूल की हो, चाहे ईरानी मूल की, हमें अपनी कहानी लगती है।

लोक कथाओं के अंत और आरंभ को लेकर भी हरेक अंचल में कुछ विशिष्ट वाक्य प्रचलित हैं। जैसे राजस्थान के माड़ अंचल में बच्चों को कहानी सुनाकर अंत में सुनाने वाली बड़ी-बूढ़ी कहती है- 'बात लै चीत लै, पैला घर की भीत लै, फूटगी तो लीप लै।' सार्थक बात के अंत में यह निरर्थक तुकबंदी कहानी के पूरी होने की घोषणा होती है। इसी तरह अवध में कहानी को किस्सा या मसला कहते हैं। किस्से की शुरुआत वहां इस वाक्य के साथ होती है- 'कोई किस्सा कहो तो रैन फटे।' यह उक्ति किस्से-कहानियों की जरूरत और उनकी शक्ति का भी पता देती है। जिस तरह भोर का उजास आते ही अंधेरा फट जाता है। किस्सों से मिलने वाली जीवनी शक्ति और जीवन दृष्टि से जीवन के संताप सहनीय हो जाते हैं। बिहार में बेगारी में रात-रात भर जागकर मक्का छीलते मजदूरों को ग्रीष्म की उमस भरी रात काटना बहुत भारी पड़ता था। वे श्रम की थकान भुलाने के लिए लम्बे-लम्बे किस्से कहा करते थे। राजस्थान में रातों में खेतों में पानी देते या जाड़े की रातों में गेहूंओं की रखवाली करते किसान रात काटने के लिए कहानियां कहते हैं।

मौखिक परम्परा में अलग से बच्चों के लिए कहानी या गीत जैसी कोई श्रेणी नहीं रही। आज भी नहीं है। समय के साथ स्वतः ही धीरे-धीरे ये लोक विवेक विकसित हुआ कि बच्चों को जानवरों की कहानियां विशेष पसंद आती हैं। वे छोटी-छोटी या कम लम्बी कहानियां सुनना पसंद करते हैं। वे हंसी के पटाखों से भरे घटनाक्रमों वाली कहानियां

सुनना पसंद करते हैं। आज भी इसी विवेक से काम लिया जाता है। बच्चों के भीतर भी ऐसा कोई अनुशासन कभी नहीं रहा कि वे ऐसी कहानियों को नहीं सुनेंगे जो खासतौर से उनके लिए नहीं हैं या जो बड़ों के लिए हैं। वे भूत-प्रेतों और जानवरों की फंतासियों की तरह स्त्री जीवन की त्रासदियों को भी उतना ही मन लगाकर सुनते हैं और संवेदित होते हैं। 'कौआ हांकनी' या काग उड़ानी रानी की उस कहानी को सुनकर वे उदास हो जाते हैं जिसमें रानी के नवजातों को राजा के आदेश से यह कहकर फिंक्वा दिया जाता है कि इस रानी के तो पत्थर पैदा होते हैं। पत्थर कहकर ताल में फेंके गए नवजात तालाब के कमल-कुमुदनी बनकर जीवित रहते हैं।

धरती पर अभी भी अनेक कबीले आदिम अवस्था में जीवनयापन कर रहे हैं। उनका अपना विशिष्ट जीवन तंत्र है। संसार को समझने की अपनी परिकल्पनाएं हैं। भारत में आप संथालों, बैगाओं, सहरियाओं, भीलों आदि जनजातीय समूहों के पास जाएं। वे अपनी उत्पत्ति की, अपने जीवन की, जीवन के सुख-दुख, हास-परिहास की कहानियां आपको सुनाएंगे। आप चाहें तो भले ही अपने अध्ययन के लिए उन्हें दर्ज कर लाएं। उनके पास तो आज भी वे मौखिक परम्परा में ही जीवंत हैं। मौखिक साहित्य वस्तुतः सामूहिक सृजन है। बल्कि कहना होगा कि सभी कलाएं अपनी शैशवावस्था में सामूहिकता का ही सृजन हैं। चाहे वह भीम बैठका की गुफाओं में की गई चित्रकारी हो, चाहे लोक संगीत, चाहे लोक नृत्य। कहानी की मौखिक परम्परा तमाम लिखित का आदि स्रोत है। लिखित का आदिम स्रोत भी है और उससे दूर मौखिक स्वरूप में भी महफूज है।

मौखिक परम्परा में मनुष्य की आपबीती से भी कहानी का सृजन होता आया है। आज भी हो रहा है। मध्यप्रदेश के मंडला डिंडोरी जिलों में बैगा आदिवासी रहते हैं। बैगा करमा, ददरिया आदि गीत गाते हैं- 'हाय रे हाय जवारा डोंगरी म ना' जैसे गीतों की धुनों पर रात-रात भर पुरुष-स्त्रियां अपनी विशिष्ट पोशाकों में सजे, मांदर की धुनों पर सामूहिक नृत्य करते हैं। ऐसे ही एक करमा नृत्य के बाद बैगा युवतियां घरों को लौट रही थीं। घनी अंधेरी रात और घास भरे मैदानों की असूझ पगडण्डियां। घर पहुंचने पर घर की किसी बड़ी-बूढ़ी बैगिन ने उनसे पूछा कि घोर अंधेरी कजल काली रात में तुम कैसे घर तक आ पाई? उन युवतियों ने बताया हम अपने पैरों की पायलों की रोशनी में रास्ता देखती हुई घर तक आ गई हैं। तो ऐसे आपके जीवन, आपके भू-दृश्यों से भी कहानियां रूप ले लेती हैं। आप बीतियों से कहानी के सर्जन की परम्परा भी कुछ कम पुरानी नहीं है। हम अनुमान लगा सकते हैं कि शिकार युग में तो आप बीतियां ही अधिक कही सुनी जाती रही होंगी।

पिछले दिनों राजस्थान के बारां जिले में सहरिया आदिवासियों के बीच जाना हुआ। मध्यप्रदेश के गुना जिले की सीमा से लगे बिलोदा गांव में जुगनू सहरिया से उनकी मौखिक परम्परा की कहानियां सुनने का अवसर मिला। अकेले जुगनू सहरिया के पास कई रातों तक सुनायी जा सकें इतनी कहानियां थीं। इतनी कहानियां थीं कि एक दिन देर रात तक कहानियां सुनने के बाद, अगले दिन फिर उनकी कहानियों के अक्षय भण्डार ने खींच लिया। पचास-पचपन की उम्र के जुगनू सहरिया ने अपने बचपन का एक किस्सा सुनाया। जैसा सुनाया वह ज्यों तो त्यों इस तरह से है। बोले-

“हमारे पड़ोस में घर थे मुसलमानों के। हमारे उनके अच्छा आना-जाना, उठना-बैठना था। दो लड़के थे। एक का नाम था-रई रहमान और एक का-सई सुल्तान। वो दोनों जिगरी थे, बचपन से ही। लार (साथ) ही रहते थे। चौबीस घंटा ही लार ही खाते पीते। एक दिन उन्ने कया-‘यार आज तो अपन पाल्टी (पार्टी) बना लेंय यार।’

‘होओ।’ सई सुल्तान न कया।

‘मीट-फीट लाके अपन तो एक कमरे में अलग ही बनाएंगे।’ रई रहमान न कइ।

तो मीट ल्याये। एक कमरा था, उसमें उन्ने प्रोगराम रख लिया। पहले गार की हंडी चलती थी, मिट्टी की। उसमें बनाया मीट। कमरे में एक छोटी सी खिड़की थी, जंगला-वंगला कुछ भी नहीं था, माने खुल्लती थी। जे उसका उन्ने ध्यान नीं रखा। अब उन्ने सब्जी बनाई दिल से। तो क्या है क वो चड़ी हंडी पे चख लेते हैं सब्जी। कि कोई सी चीज की कमी नीं रेगी हो।

तो वो केने लगा सई सुल्तान कि- 'यार रई रहमान सब्जी को चख यार, कोई सी चीज की कमी तो नीं रेगी हो।' तो उसने चखा तो नमक की कमी रेह गई। तो वो केरा रई रहमान, कि-

'सई सुल्तान
कपूर बिगर हंडी बेरान।'

मतलब नमक की कमी रेगी। बोले- 'चलो ऊपर से डाल के खालेङ्गे। उसको ढक कै, क अब नवाज पढ लेते हैं अपन।'

अब वो तो नवाज में लग गए और एक कुत्ता उसमें जरासी ताक में होकर घुस गया। हंडी में उसने जबरन मुंह चला दया। अब खाके सपील-वपीलों में उसने बढक दई ना (खाके दीवारों से टकराया), वो हंडी फूट गई। गिनगा ही गिनगा (हंडी का मुंह) उसके गले में रेह गया। अब वो घुस तो गया था कमरे में निकल नीं पार्या। कमरे में फिरर्या।

नमाज से निबटे नीं जब वो एक ने देख लया, 'अरे के तेरी तैनें तो सफाया कर दया। अब वो एक केर्या सई सुल्तान क सुन भैया-

'लम्यान
पुच्यान
धूम मचान
गले कंठ्यान और सफा मैदान।

नहीं बचा कुछ भी अपने खाने को। सपा कर गया हंडी को तो वो।

तो ऐसे हमारे पड़ोसी थे रई रहमान और सई सुल्तान। उनकी भाषा मुझे बड़ी प्यारी लगती थी।''

ऐसी घटनाएं जो दिनों तक लोगों की जुबान पर बनी रहें। वे अपनी विषयवस्तु में ऐसी रोचक हों कि एक बार सुनने के बाद दूसरे भी उन्हें लोगों के बीच सुनाना पसंद करें, समय पाकर संशोधित-परिवर्द्धित होते-होते किस्सों के रूप में स्थिर हो जाती हैं। लोक में मुक्त भाव से कहानी सुनाई और सुनी जाती है। सुनने-सुनाने का आनंद उठाया जाता है। जहां तक कहानी के आशयों और निहितार्थों को समझने समझाने की बात है, उसके लिए जीवन पड़ा है। साहित्य के अर्थ यूं भी पहले श्रवण या पाठ में नहीं खुलते बल्कि वे जीवन भर, जीवन के स्तर दर स्तर खुलते रहते हैं। मृत्युपर्यंत अर्थ खुलते रहते हैं।

मौखिक परंपरा में पहेलियां पूछना और कहावत कहना लोकप्रिय विधाओं के रूप में सरसब्ज है। विजयदान देथा ने बातां री फुलवाड़ी के बाद बड़ा काम 'राजस्थानी कहावत कोश' तैयार करने का ही किया था, जिसमें उन्होंने किस कहावत के पीछे क्या कहानी प्रचलित है, उसे लिखा था। कहावतों की तरह पहेलियां भी अनेक बार अपने भीतर कोई दिलचस्प कहानी छिपाए रहती हैं। इसका एक अनोखा उदाहरण छत्तीसगढ़ के कोरबा जिले के एक गांव में हरनबाई से सुनी पहेली में देखने को मिला। छत्तीसगढ़ के इस इलाके में पहेली को जनउला या जनौला कहते हैं। हरनबाई ने एक जनौला कहा- 'टीप रे टीपुरी, माथा काहे फोरा। हेंगा रे बेंगा, रात काहे रेंगा।' इस जनौला में जो मधुर कहानी रह रही है, वह ये है-

'चाँदनी रात में महुआ के पेड़ से महुआ झर रहा था। तभी इधर से निकलकर, महुआ के पेड़ के नीचे से एक सांप जा रहा था। महुआ का एक फूल सांप के सिर पर गिरा। महुआ का फूल सिर पर गिरा तो सांप ने कहा-

टीप रे टीपुरी

सिर किसलिए फोड़ा।

महुआ ने कहा-

टेढ़े रे मेढ़े

तू रात में क्यों दौड़ा।

महुआ का मीठा जवाब सुनकर सांप को हंसी आ गई। वह सरसरते हुए चांदनी में आगे निकल गया। महुआ रात भर वैसे ही झरता रहा।”

बिज्जी ने लिखा है- ‘जिण भांत बीज सूं हरियाळी फूटै, सूरज सूं उजास तूटै, उणी भांत मिनख री जीभ सूं बातां बूटै।’ कि- ‘जिस तरह बीज से हरियाली फूटती है, सूर्य से उजाला फैलता है, उसी तरह मनुष्य की जबान से कहानियों के कल्ले फूटते हैं।’

मौखिक साहित्य का सौंदर्य इस बात में है कि वह अनगिनत लोगों द्वारा, अनगिनत तरीकों से, अनगिनत रूपों में कहा सुना जाता है। उसका सौंदर्य बीहड़ का सौंदर्य है। जंगली फूलों, झरनों और सरिताओं की तरह गतिमान। स्थिरता के लिए, बनावट या कृत्रिमता के लिए वहां कोई स्थान नहीं है। अनगढ़पन में ही उसकी खूबसूरती है। किसी भी तरह की अतिरिक्त काट छांट या संपादन का भार वह सह नहीं पाता है। उसका लुत्फ निर्भर रहने में है। तिनके का भी भार उसकी बीहड़ रचनात्मकता को बर्दाश्त नहीं। लिखित स्वरूप में आते ही उसके कहन, रूप आदि सौंदर्य के हर पहलू पर स्थिरता की परछाई पड़ जाती है। एक खास तरह की सौंदर्यात्मक जड़ता उसकी नियति हो जाती है। तब क्या मौखिक साहित्य को कभी लिखित रूप में आना ही नहीं चाहिए। आना चाहिए लेकिन आने के लिए लम्बी प्रतीक्षा करनी चाहिए। प्रसव की सी प्रतीक्षा। ‘हजारों साल नर्गिश अपनी बेनूरी पे रोती है, बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।’ लोककथाओं को पारस स्पर्श पाने के लिए विजयदानदेथा जैसे महान साहित्यकार के जन्मने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जैसे लोकगीत कुमार गंधर्व जैसे बुलंद गायक की प्रतीक्षा करते हैं। बच्चों की पसंदीदा उक्राइनी लोककथाओं ने ब्लादीमिर बोइको जैसे दृष्टिवान संकलनकर्ता की प्रतीक्षा की। इस प्रतीक्षा तक उन्हें अपने अनंत और सरित एवं तड़ित की तरह वेगवान स्वरूप में इंसानी समुदायों के समीप बने रहना चाहिए। मौखिक कहानियों का रचनाचक्र जलचक्र की तरह है। महाजीवन के समुद्र से अनुभवों के मेघ उठते हैं। किस्सागो इंसानों के हृदयों में उमड़ते-धुमड़ते हैं। कल्पनाओं की हवाओं से वेगवान होते हैं। वाणी की बूंदों से झरते हैं। श्रोताओं के नद में बहते हैं। जनसमुदायों की मानसिक और हृदय की भूखों के चरागाहों और खेतों को सींचते हैं। इस तरह सभ्यताओं को समृद्ध से समृद्धतर करते हैं।

‘लोककथाओं को समझने का उपक्रम’ नामक अपने लेख में कोमल कोठारी कहते हैं- “जो कथाएं समाज के यथार्थ के साथ चल सकती थीं वे जीवित परंपरा के रूप में चलती रहीं और जिनका संदेश काल की गति में अपनी उपयोगिता खो चुका था, वे सहज ही विलुप्त हो गईं।”¹² अर्थात् इंसानों की तरह उनकी कहानियां भी उम्र के किसी भी पड़ाव पर शैशव, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, बुढ़ापे में कभी भी, कहीं भी कालकलवित हो सकती हैं, लेकिन इंसानों की संततियों की तरह कहानियों की संततियां अमर हैं।

आज भी बच्चों के लिए मौखिक कथाओं की कमी नहीं है। उनके संकलन के लिए लोक में जाकर रहने की जरूरत है। लोक भाषाओं से प्यार करने की जरूरत है। धैर्य के साथ जनसमुदायों के बीच समय बिताने की जरूरत है। जैसे रामनरेश त्रिपाठी ने बिताया, जैसे देवेन्द्र सत्यार्थी ने बिताया या जैसे विजयदानदेथा ने बिताया। विजयदान देथा ने अपनी मायड़ भाषा मारवाड़ी से वैसा ही प्रेम किया जैसा उरांव भाषा से मेरा दागिस्तान जैसी कालजयी रचना के लेखक रसूल हमजातोव ने किया। विजयदानदेथा उर्फ बिज्जी ने तीन प्रतिज्ञाएं कीं। पहली नौकरी कभी नहीं करूंगा, लेखक बनूंगा। दूसरी अपने गांव में रहकर ही लिखूंगा। तीसरी अपनी मातृभाषा मारवाड़ी में ही लिखूंगा। वे यूं विदेशों तक व्याख्यान देने गए लेकिन आजीवन अपने गांव में ही रहे। लेखन ही किया और मारवाड़ी में ही लिखा। इस श्रम और प्रतिबद्धता से जो लेखन सामने आया वे नोबेल पुरस्कार के लिए नामित हुए। बच्चों के लिए उन्होंने लोककथाओं का पुनर्लेखन कर ‘अनोखा पेड़’ जैसी अनुपम कृति की रचना की। आश्चर्य तो यह जानकर होता है कि बिज्जी की सारी कथाओं का श्रोत केवल और केवल उनका गांव बोरुंदा ही है। एक ही गांव की लोककथाओं ने उन्हें विश्वविख्यात बना दिया। सन् दो हजार छह में अपने मित्रों के साथ मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने बताया कि मैं

अपने गांव की स्त्रियों से लोक कथाएं सुनता हूं। उनका कहना था कि लोक कथाओं का अक्षय भण्डार स्त्रियों के पास है, खासकर दलित स्त्रियों के पास, पुरुषों के पास नहीं है या कम है। अब स्त्रियों को तो गांव में काम-काज के लिए जाना होता है। वे उन्हें उनकी उस दिन की दिहाड़ी/मजदूरी देते। अकेली औरत रुकती नहीं तो साथ में जो रुकतीं उनकी भी दिहाड़ी देते। कहानी सुनते। कहानी की पुनर्रचना करके वापस उन्हीं स्त्रियों के पास जाते, उन्हें सुनाते। अपनी ही सुनाई कहानियों के पुनर्लिखित रूपों को सुनकर वे चमत्कृत हो उठतीं। मौखिक परंपरा में आज भी कहानियों का अक्षय भण्डार है, उसके संकलन, सम्पादन, दस्तावेजीकरण का विशाल काम आधुनिक सभ्यता के सिर पर ऋण की तरह मंदा हुआ है। अब वह ऋण चक्रवृद्धि सूद की तरह हो गया है क्योंकि प्रकृति के विनाश पर तुली हुई यह तथाकथित विकसित सभ्यता मौखिक परंपरा की निधि को भी स्वाहा होते देखे तो कुछ अचरज की बात नहीं।

लोक कथाएं यूं तो चांद है मगर उनमें दाग है। और आप जानते हैं दाग अच्छे नहीं होते। लोककथाओं के चेहरे पर सामंती मूल्यों के दाग हैं। सामंती मूल्य उनके चरित्र को एक उत्पीड़क के चरित्र में बदल देते हैं। इससे कई बार उनका चेहरा विकृत नजर आता है और उसे देखकर वितृष्णा उपजती है। लेकिन इतनी सी बात के लिए हम अपने चांद को कैसे खो दें। सामंती मूल्यों के दाग के चलते क्या हमने रामचरितमानस को खो दिया। महाभारत को खो दिया? सामंती मूल्य क्या हैं? ऊंच-नीच, गैर बराबरी, जातिप्रथा, लिंगभेद, अकर्मण्य कुलीनों का सम्मान, कर्मठ कुलियों के प्रति हिकारत भाव ये सब सामंती मूल्य हैं। हजारों साल से उत्पीड़ित दलितों और स्त्रियों के हिकारत और उपहास का भाव सामंती मूल्य हैं। और इस सबसे लोककथाएं भी ग्रस्त हैं। मगर ऐसा है तो इसमें आश्चर्य कैसा? शताब्दियों से हमारे समाज का ढांचा सामंती ही रहा है। आज भी हम कोई समता, समानता, बंधुता आधारित समाज नहीं बन सके हैं। इसमें न जाने अभी और कितना वक्त लगना बाकी है। यद्यपि हम कोशिश करते हैं सामंती मूल्य कब्र में जगह पाएं और आधुनिक मूल्यों को चैन से रहने दें। लोककथाओं के प्रति भी यही नजरिया होना चाहिए। और उन्हें जब विजयदानदेथा जैसा समर्थ लेखक मिल जाता है तो लोककथा में निहित तमाम नकारात्मक निहितार्थों को उलटकर कथा को सर के बल खड़ाकर देता है। 'बातां री फुलवारी' के खण्डों की भूमिकाएं लिखते हुए कोमल कोठारी ने लोककथाओं के संबंध में विस्तार से विवेचन किया है। फुलवाड़ी के सातवें भाग की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि 'विश्व के लोक साहित्य को देखने पर साफ महसूस होता है कि लोकजीवन की समग्र चेतना ने कभी राजतंत्र और निरंकुश सत्ता को प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा। जहां उसे मौका मिला, उसने राजतंत्र और उसके कर्मचारियों की धृष्टता, निरंकुशता, अन्याय, कामान्धता, चापलूसी, आडंबर, नीचता और दुर्भावना को अवश्य धिक्कारा है। यही कारण है कि सामंती समाज व्यवस्था पर व्यंग्य की तीखी धार से लेखकों ने आक्रमण किया और उनकी लेखनी से स्पेन के डॉन क्विग्नोट और रूस के खोजा नसीरूद्दीन जैसे पात्र निकलकर सामने आ सके। इतना ही क्यों कहेँ जो छोटी-छोटी पशु पक्षियों की कथाएं, जो सामूहिक अनुभूति और तीव्र अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हुईं, उनमें भी सत्ता के प्रति घोर उपेक्षा, घोर व्यंग्य और घोर तिरस्कार की भावना निहित रही। 'फेबल' के नाम से पहिचानी जाने वाली कथाओं में जंगल का राजा शेर रहा है। यह 'शेर' विश्व के सम्पूर्ण लोक साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र रहा है। किन्तु इस बिचारे शेर के जंगल की राजसत्ता, जंगल के सभी निवासियों की एकछत्र स्वीकृति के उपरांत भी उसका चरित्र क्या व कैसा रहा? उसे कभी गिलहरी ने बेवकूफ बना दिया, कभी खरगोश की चतुराई से पेरशान हो गया, कभी सियार की चालाकी में फंसकर प्राण गंवा बैठा। अपनी तारीफों की चिन्ता करने वाला शेर किसी भी कथा में, अपनी शक्ति और सत्ता के बल पर विजयी नहीं हुआ। यह जंगल का मूर्ख शेर ही मध्ययुगीन लोककथाओं में मानव समाज के राजा का पर्याय सिद्ध हुआ।'¹³ गहराई से देखने पर हम पाते हैं कि लोककथाओं का मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए शाश्वत संघर्ष आज भी जारी है।

लोककथाओं की संरचना में किस्सागोई का जो गुण समाया रहता है हमारे समय में कई देशों में लेखकों ने इस शिल्प का आधुनिक कहानियां लिखने में रचनात्मक इस्तेमाल किया है। वित्ताउते जिलिन्स्काइते लिखित 'रोबट और तितली'

इसका एक उम्दा उदाहरण है। स्कॉलास्टिक से प्रकाशित हुई कहानी 'पहाड़ जिसे चिड़िया से प्यार हुआ' या एकलव्य से प्रकाशित हुई कहानी 'भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं?' क्या ही कमाल की कहानियां हैं। इन कहानियों का शिल्प भी लोककथा वाला है। आप इन कहानियों को एक उम्दा लोककथा की तरह बच्चों को सुना सकते हैं। लोककथा ही और बिज्जी द्वारा लिखी हुई भी, कहानी 'आशा अमरधन' को सुनकर किशोर बच्चों की आंखों में आंसू छलक आते हैं कि आखिर किस बात के लिए कृषक दम्पति उन्हें घर में ताले में बंद कर छोड़ गए। दोनों भाई-बहन एक वर्ष बाद मां-पिता के लौटने पर भी जीवित रहे तो यह उन्हें क्यों बर्दाश्त नहीं हुआ और कैसे एक वर्ष तक भूखे प्यासे रहने के बावजूद भी आशा टूट जाने पर एक पल में उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

लोककथाओं में बच्चों के अंतर्मन को छू लेने, प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता को देखते हुए ही अनेक साहित्यिकों और शिक्षाविदों ने बच्चों की शिक्षा में लोककथाओं की गहरी उपयोगिता को लेकर लिखा है। कोमल कोठारी ने बातों की फुलवारी के छोटे भाग की भूमिका में लिखा है कि- "प्रारंभिक शैक्षणिक आवश्यकता की परिपूर्ति के लिए यदि विश्व के पास कोई भी साधन है तो वह केवल लोककथाएं हैं। ...विश्व के विकसित देशों के प्रारंभिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को देखने पर भलिभांति ज्ञात हो जाएगा कि उनकी सम्पूर्ण पाठ्यसामग्री में से नब्बे प्रतिशत साहित्य लोककथाओं से परिपूरित है।"¹⁴ यह बात उन्होंने 1966 में आज से पचास साल पहले कही थी कि "पूर्व प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा एवं माध्यमिक शिक्षा स्तर तक लोककथाओं की शक्ति का सफल प्रयोग व परीक्षण किया जा सकता है। किन्तु हमारी शैक्षणिक पद्धति में इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा रहा है। लोककथाओं के बालोपयोगी प्रकाशनों का भी अभाव है। इस ओर कोई सुसंयोजित प्रयत्न भी दृष्टिगत नहीं होता। यह परिस्थिति केवल हमारे प्रदेश की हो सो बात नहीं है। भारत के लगभग सभी राज्य अपने मौखिक साहित्य की परम्परा व सम्पदा से अछूते हैं।"¹⁵

'कहानी कहाँ खो गई?' आलेख में प्रोफेसर कृष्ण कुमार बच्चों के लिए लोककथाओं की गहरी जरूरत को रेखांकित करते हैं। वे कहते हैं- "लोक कथाओं और परी कथाओं की संरचना छोटे बच्चों के सोचने की शैली से मेल खाती हैं, और यही इन कहानियों के प्रति छोटे बच्चों के आकर्षण का मुख्य आधार है। बहुत गंभीर विपदाओं के कल्पनाशील हल इन कहानियों की संरचना में गुंथे होते हैं। मनुष्य की सामाजिकता और प्रकृति की चुनौति इन कहानियों की अंतर्धारा होती है। यह धारा समाज में अपना जीवन एक छोटे शरीर और तमाम तरह की आशंकाओं के साथ शुरू कर रहे छोटे बच्चों की कई मानसिक मांगे पूरी करती है। इन कहानियों को सुनते हुए छोटे बच्चे अपनी मातृभाषा की बुनियादी लयों के सम्पर्क में आते हैं। शब्द और वाक्य रचना का पूरा भण्डार उनके हाथ लगता है। इस भण्डार से वंचित रह जाने वाले बच्चे कुछ बड़े होकर जब पढ़ना और लिखना सीखते हैं, तब उनके लिए भाषा एक यांत्रिक चुनौति बन जाती है। वह सहज जरूरत या इच्छा नहीं बन पाती। बाद में वे ध्यानपूर्वक सुनने, संयत ढंग से बोलने या संवाद में हिस्सा लेने जैसी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाते।"¹⁶

बीते एक दशक में हमारे देश में बच्चों के लिए मौखिक कहानियों के क्षेत्र में एक तरह की कथा सजगता आई है। यद्यपि यह सजगता अभी अंकुरण की अवस्था में ही है। स्कूलों के जरिए नए सिरे से मौखिक कहानियों को लौटाने की बात चली है। प्रकाशन उद्योग ने भी बच्चों की दुनिया में बाल साहित्य के बाजार की खोज करते हुए 'स्टोरी टेलिंग' के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया। हालांकि ऐसे कार्यक्रम किसी नए प्रोजेक्ट के मॉडल की तरह महानगरों तक ही सीमित रहे। इन अधिकतर कार्यक्रमों को देखकर यह भी लगा कि ये किसी झरने, नदी या तालाब के पानी की तरह सर्वसुलभ और सबके लिए नहीं हैं। ये ब्रांडेड पानी की तरह हैं जिसका बिल चुकाना पड़ता है।

मौखिक कथाओं की कैसी स्वाभाविक जगह मानव समाज में बन गई थी, जिसे आधुनिक सभ्यता ने नष्ट कर दिया है। यह किसी लोककथा के दुखांत की तरह सच है। मौखिक कहानियों के एक स्वर्णिम दौर की समाप्ति की यह सूचना, क्या एक नए दौर की शुरुआत की सूचना भी है?

संदर्भ

1. भारतीय कथा परंपरा-राधावल्लभ त्रिपाठी
2. वही
3. हाथीकाण्ड, विजयदान देथा, इण्डिया टुडे साहित्य वार्षिकी
4. भारतीय कथा परंपरा -राधावल्लभ त्रिपाठी
5. वही
6. वही
7. वही
8. 'हमारा समय और लोक', कोमल कोठारी से उदय प्रकाश की बातचीत, 'लोक', संपादक - पीयूष दहिया, पृष्ठ-469
9. भूमिका, बातों की फुलवाड़ी, भाग-1
10. मां ने बेटे से ब्याह किया (मराठी), भारत की लोक कथाएं, संकलन एवं संपादन, ए. के. रामानुजन, एनबीटी
11. विजयदान देथा से प्रभात, शिवकुमार, विश्वंभर की बातचीत, शिक्षा विमर्श, सितम्बर-अक्टूबर 2011
12. लोक कथाओं को समझने का उपक्रम, भूमिका, बातों की फुलवाड़ी, भाग-10, कोमल कोठारी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
13. भूमिका, बातों की फुलवारी, भाग-7, रूपायन संस्थान, बोरूदा
14. भूमिका, बातों की फुलवारी, भाग-6, पृष्ठ-19, रूपायन संस्थान, बोरूदा
15. वही
16. दीवार का इस्तेमाल, कृष्ण कुमार, एकलव्य, पृष्ठ-19

लेखक परिचय: राजस्थान के जाने-माने युवा कवि हैं। एकलव्य, भोपाल; रूम टू रीड, इण्डिया एवं अन्य प्रकाशनों से बच्चों के लिए कविता एवं कहानियों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं।